Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
Peer-Peer Reviewed, Refereed & Open Access International Journal - As per UGC Norms
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:7(2), July 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

'धनम् मूलम् इदम् जगत्'

डॉ.आलपाटि भानु प्रसाद,
हिन्दी प्राध्यापक,
एस.आर.आर&सी.वी.आर शासकीय
महाविद्यालय (स्वा),
विजयवाडा ।

भारतीय धर्मग्रंथों में अनेक सूक्तियाँ विद्यमान हैं, जो मानव जीवन के यथार्थ तत्त्व का प्रतिपादन करती हैं । उनमें से एक प्रसिद्ध सूत्र रूप में वाक्य कौटिल्य के अर्थशास्त्र में है- सुख का मूल धर्म है और धर्म का मूल अर्थ है । इसका तात्पर्य है कि वास्तविक सुख का आधार धर्म है तथा धर्मपालन का आधार अर्थ है । 'अर्थ' ऐसा कहने पर धन, जो सभी प्रकार की आजीविका तथा व्यवहार का प्रमुख साधन है । 'अर्थ' मानव की दैनंदिनी आवश्यकताओं की पूर्ति का एक सफल साधन है । हमारे धार्मिक ग्रन्थों में भी इसका स्थान 'धर्म' के बाद रखा गया । परंतु आज के पारिश्रामिक विकास सभ्यता में 'अर्थ' का स्थान 'धर्म' के पहले आ गया । समाज के प्रत्येक क्षेत्र में 'अर्थ' ही मुख्य भूमिका निभा रही है । इसीलिए समाज में यही धारणा प्रचलित है कि 'सर्वगुणाः कांचनम् आश्रयन्ति' ।

समाज दो वर्गों में विभक्त है, जो आर्थिक संघर्षों से संबंध रखते हैं । जैसे -अमीर-गरीब, जमींदार-किसान, मालिक-मजदूर, पूँजिपति-सर्वहरा वर्ग आदि । सामाजिक विकृति तथा वर्ग वैषम्य का कारण 'अर्थ' को मानते हुए व्यक्त किया कि- "धन के ही कारण समाज में वर्ग संघर्ष हो रहे हैं और धन ही सामाजिक शक्ति सबलता का परिचायक है ।"[1] वास्तव में देखा जाए तो यह परिलक्षित होता है कि प्रत्येक मानव 'अर्थ' के पीछे दौड़ रहे हैं । धन को साधन न मानकर साध्य मान रहे हैं । माने धन मनुष्य के लिए नहीं मनुष्य धन के लिए बन गया है ।

ऋग्वेद में 'अर्थ' की परिभाषा इस प्रकार दिया गया है कि - "पुरुषार्थ के रूप में अर्थ का तात्पर्य उन सभी भौतिक वस्तुओं से है, जिनकी गृहस्ती चलाने, परिवार बसाने तथा धार्मिक कार्यों को पूरा करने के लिए आवश्यकता पड़ती है ।"[2] इसके अनुसार मनुष्य को अपनी जीविका चलाने के लिए 'अर्थ' एक साधन मात्र है न कि साध्य है । "पैसा अर्थात विनिमय माध्यम के रूप में सामान्य रूप से स्वीकार की जानेवाली तथा मूल्य मापन तथा संचय का कार्य करनेवाली वस्तु ।"[3]

मानव जीवन में अर्थ का विशेष महत्व है । मौलिक आवश्यकताएँ जैसे रोटी, कपड़ा और मकान के लिए अर्थ की आवश्यकता है । अर्थ के अभाव में इन आवश्यकताओं की पूर्ति न हो सकती है । हर एक आदमी की यह महत्वकांक्षा होती है कि ज्यादा से ज्यादा अर्थ की प्राप्ति करे और अपने जीवन को सुखी बनाए । इसके साथ-साथ पारिवारिक तथा समाजिक दायित्व निभाने में भी सफल हो सके । "यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि अर्थ आधुनिक युग की रीढ़ की हड्डी है, इसके बिना मनुष्य का समाज में कोई अस्तित्व नहीं है । यदि समाज और व्यक्ति के जीवन से हम अर्थ निकाल दें तो संपूर्ण ढाँचा ही धराशायी हो जाएगा ।"[4] अर्थ ने समाज के ढाँचे को बदल रख दिया है । मानव की दूषित प्रवृत्ति का कारण अर्थ ही है । समाज में बढ़ती हिंसा, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी आदि मूल्य हीन भावनाओं का मूल कारण अर्थ ही है । डॉ.ज्ञानचंद शर्मा के अनुसार "अर्थ एक ऐसी लालसा है जो भाई-भाई, पिता-पुत्र व रिश्तेदारों तक में आपसी मतभेद कर देता है ।"[5] धन पारिवारिक रिश्ते टूटने का कारण बन रही है । इसी के कारण पिता-पुत्र, भाई-बहन, पति-पत्नी

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
Peer-Peer Reviewed, Refereed & Open Access International Journal - As per UGC Norms
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:7(2), July 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

आदि पारिवारिक रिश्ते भी टूट रही हैं । व्यक्ति दिन ब दिन महत्वाकांक्षी होता चला जा रहा है । वह अपनी प्रत्येक इच्छा पूरा करना चाहता है । अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए उन्हें अर्थ पर ही निर्भर होना पड़ता है । प्रत्येक व्यक्ति अपने तथा अपने परिवार के भविष्य के प्रति चिंतित हो रहा है । धन के द्वरा व्यक्ति अपने तथा अपने परिवार के भविष्य को सुरक्षित कर सकता है । धन की महत्ता के बारे में चाणक्य ने अपने ग्रंथ अर्थशास्त्र में व्यक्त किया कि - "अर्थ मानव जीवन का सर्वस्व ही नहीं बल्कि परमात्मा तक पहुँचने का एक साधन है, शक्ति है ।"[6]

अर्थ की असमानता मानव समाज के क्रियाकलाप, खान-पान, रहन-सहन को अस्त-व्यस्त कर देती है । इसीलिए कार्ल मार्कस की दृष्टि में समस्त सामाजिक समस्याएँ त्रुटिपूर्ण आर्थिक वितरण पर ही आधारित होती हैं । इतिहास के पन्नों को देखने पर भारतीय समाज के विकास की प्रारंभिक अवस्था में सम्पत्ति पर धनिक वर्ग का पूर्ण अधिकार था तथा वे उसका उपभोग भी अपनी आवश्यकतानुसार स्वतंत्र रूप से करते थे । इससे उसकी आर्थिक स्थिति सदृढ़ थी जबकि अन्य लोग उन पर आश्रित होने के कारण हीनतर होते चले गये थे । उस समय आर्थिक असमानता का मूल कारण धनिक वर्ग द्वारा वैयक्तिक धन संचय तथा अन्य लोगों का दिन-प्रतिदिन हीनतर होना ही था, जिसने समाज में आर्थिक संघर्ष का बीजरोपण किया । इसी से पूंजीवाद का जन्म भी हुआ । उस के बाद ज्यों-ज्यों समाज विभिन्न जातियों, उप जातियों मे विभक्त होता रहा त्यों-त्यों सामन्तों तथा धनाढ्य श्रेणियों के पास शक्ति तथा धन पूंजीभूत होता गया । धीरे-धीरे पूँजीवाद ने अपने आश्रयदाता सामन्तवाद का भक्षण किया तथा पूंजी के साथ एक प्रकार से शक्ति का भी एकाधिकार कर लिया गया । इसका परिणाम यह हुआ कि मनुष्य की अपेक्षा समाज में धन को अधिक महत्व दिया जाने लगा तथा उसी समाजिक स्थिति भी आर्थिक स्थिति से निश्चित हो गई । भिन्न-भिन्न आर्थिक स्थिति से समूहों में वेश-भूषा, खान-पान, रहन-सहन तथा सोच-विचार में अंतर होने के कारण सामाजिक दूरियाँ भी बढ़ती जा रही हैं । जिस कारण समाज में भिन्न-भिन्न वर्गों के लोगों में संघर्ष उत्पन्न होता जा रहा है । यह संघर्ष आज संपूर्ण विश्व के शोषक तथा शोषितों में, अमीरों तथा ग़रीबों में, मालिक तथा श्रामिकों में दृष्टिगोचर होता है । धीरे-धीरे समाज 'धनम् मूलम् इदम् जगत्' बन गया है ।

संदर्भ-सूची -

1. हिन्दी उपन्यास में मध्य वर्ग, डॉ.मंजुलता सिंह, पृ.363
2. भारतीय सामाजिक संस्थाएँ- डॉ.गोपाल कृष्ण अग्रवाल, पृ.85
3. अर्थशास्त्र - डॉ.आर.ए.सोलुंके तथा बी.एल जिभकाटे, पृ.145
4. आधुनिक हिन्दी कहानी में वर्णित समाजिक यथार्थ- डॉ.ज्ञान चंद शर्मा, पृ.123
5. आधुनिक हिन्दी कहानियों में वर्णित सामाजिक यथार्थ - डॉ.ज्ञानचंद शर्मा, पृ.120
6. कौटिल्य अर्थशास्त्र - भारतीय अर्थव्यवस्था- डॉ.कल्याण कुलकर्णी, पृ.23